समयसार, ६१ गाथा का भावार्थ है। भावार्थ है न? ६१ गाथा। क्या कहते हैं? सुनो! **द्रव्य की सर्व अवस्थाओं में द्रव्य में जो भाव व्याप्त होते हैं, उन भावों के साथ द्रव्य का तादात्म्यसम्बन्ध कहलाता है।** क्या कहा? द्रव्य अर्थात वस्तु-पदार्थ। उस द्रव्य के साथ सर्व अवस्थाओं में—प्रत्येक अवस्था, अनादि अनन्त जितनी अवस्थाएँ हैं, उन सभी अवस्थाओं में द्रव्य में जो भाव, जो भाव व्यापता है, उस भाव के साथ द्रव्य का तादात्म्यसम्बन्ध-तद्रूपसम्बन्ध है।

जैसे कि आत्मा की प्रत्येक अवस्था में ज्ञान-आनन्दादि रहते हैं तो ज्ञान और आनन्द के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, उसे आत्मा कहते हैं और राग, दया, दानादिभाव (होते हैं, वे) आत्मा की प्रत्येक अवस्था में नहीं, इसलिए वे पुद्गल अवस्था में जाते हैं। पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध में जाते हैं। आहाहा!

पहला सिद्धान्त तो इतना कहा कि कोई भी द्रव्य-वस्तु जो है, उसकी सभी अवस्थाओं में रहे और व्याप्त हो तो उस द्रव्य के साथ उस भाव को तादात्म्य कहते हैं परन्तु किसी समय हो और किसी समय न हो तो उस द्रव्य के साथ भाव को तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। ये रागादिभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव हैं, वे आत्मा की प्रत्येक अवस्था में नहीं रहते। संसार अवस्था में हैं, तथापि मोक्ष अवस्था में नहीं तो यह तादात्म्यसम्बन्ध, राग का आत्मा के साथ तादात्म्य-तद्रूपसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! इस राग का सम्बन्ध पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, भाई!

पुद्गल की सर्व अवस्थाओं में पुद्गल में वर्णादि भाव... वर्ण अर्थात् रंग, गंध, रस, स्पर्श, शुभभाव, अध्यवसाय, गुणस्थान आदि **व्याप्त हैं...** यहाँ तो पुद्गल में व्याप्त हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म, यह जड़ पर्याय पुद्गल है। यहाँ कर्म जो पुद्गल हैं, उसके साथ ये पुण्य आदि परिणाम शुभभाव (व्याप्त हैं)। जहाँ-जहाँ कर्म है, वहाँ-वहाँ राग है। राग है, वहाँ कर्म है, ऐसे कर्म के साथ राग का तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! ऐसी बात है। अब यहाँ तो ये दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव धर्म हैं और धर्म का कारण है, ऐसा मानते हैं। दृष्टि विपरीत (है), मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

पुद्गल की सर्व अवस्थाओं में... पुद्गल के साथ, इसका अर्थ यह जो भेद अन्दर पड़ता है न? गुण की पर्याय में भेद पड़ता है। लब्धिस्थान संयम, आदि लिये न? यह भेद भी अभेद आत्मा के साथ व्यापक नहीं है। किसी समय हो और किसी समय न हो, वह आत्मा के साथ व्यापक नहीं है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श को पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। ऐसे शुभराग, दया, दान भाव को पुद्गल के साथ सम्बन्ध है। ऐसे साधक की जो संयम की पर्याय, भिन्न-भिन्न अवस्था, लब्धिस्थान को पुद्गल के साथ सम्बन्ध है; अभेद आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसा काम है। अरे! सम्यग्दर्शन आदि जो पर्याय है, वह भेदरूप है। आहाहा! अन्तर त्रिकाल ज्ञान के साथ वह अभेद नहीं है। आहाहा! कठिन बात है। चौदह प्रकार की जो मार्गणा है—ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, चारित्र के भेद, वे सब भेद पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखते हैं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ पहले कहा, सुना नहीं? जयन्तीभाई! ढूँढ़ा करते हैं। तीन बार तो कहा, ६१ वीं गाथा का भावार्थ। ध्यान नहीं रखा। ६१ वीं गाथा का भावार्थ। बीच में सब व्यर्थ गया। सुननेवाले को भी अभी... आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? इसे पहले से ध्यान रखना चाहिए, यह तो वीतराग की वाणी है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा का कथन है, ये सन्त-दिगम्बर सन्त यह कथन करते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **द्रव्य की सर्व अवस्थाओं में द्रव्य में जो भाव व्याप्त होते हैं, उन भावों के साथ द्रव्य का तादात्म्यसम्बन्ध कहलाता है।** कितनी बात! अब इतनी बात

करके कहते हैं कि **पुद्गल की सर्व अवस्थाओं में...** कर्म जो जड़ पुद्गल है... आहाहा! उसकी सर्व अवस्थाओं में। रंग, गन्ध, शुभभाव, गुणस्थान भेद आदि भाव **व्याप्त हैं इसलिए वर्णादि भावों के साथ पुद्गल का तादात्म्यसम्बन्ध है।** पुद्गल का तादात्म्य -सम्बन्ध है। आहाहा! उस पुद्गल के साथ (सम्बन्ध है)। भेद, राग और जड़ की पर्याय, इन सबका पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! जीव-अजीव अधिकार है न?

मुमुक्षु : इसमें से निकल जाते हैं, इसलिए इसके नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है नहीं। अभेद है, उसके साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। भेद पड़ा, वह तादात्म्यसम्बन्ध नहीं। भेद तो अमुक काल रहे, पश्चात् नहीं रहता। इसकी प्रत्येक अवस्था में भेददशा नहीं रहती; इस कारण से पुद्गल की यह भेद अवस्था है। राग पुद्गल में है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन परमात्मा ने कहा हुआ, वह समझना सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। आहाहा! यहाँ जीव-अजीव अधिकार लिया है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में जो दया, दानादि राग होता है और पर्याय में जो भेद पड़ते हैं, वे आत्मा की प्रत्येक अवस्था में नहीं रहते; इसलिए प्रत्येक अवस्था में रहनेवाले पुद्गल के साथ उन्हें सम्बन्ध है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

संसारावस्था में जीव में... भेद, राग, रंग आदि भाव। **किसी प्रकार...** पर्यायनय से, व्यवहारनय से समय की स्थिति देखकर कहे जाते हैं। **किन्तु मोक्ष अवस्था में जीव में वर्णादि भाव...** गुणस्थान आदि, भेद आदि, दया-दानादि राग, ये भाव मोक्ष अवस्था में **सर्वथा नहीं हैं, इसलिए जीव का रंग, गन्ध और राग भावों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं है,...** आहाहा! जैसे अग्नि को और उष्णता को तादात्म्यसम्बन्ध है, वैसे भगवान आत्मा के साथ दया, दान का राग और गुणस्थान भेद का तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। है?

जीव का वर्णादि भावों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं है, यह बात न्यायप्राप्त है। यह बात न्याय से सिद्ध है। आहाहा! जिसे आत्मद्रव्य दृष्टि में लेना हो तो उसे तो अभेद है, उसकी दृष्टि करना। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी

प्राप्त करनी हो, उसे आत्मद्रव्य अभेद पूर्ण गुण का अभेद आत्मद्रव्य है, वह दृष्टि में लेना है। दोपहर को ३७६ में आ गया; नहीं ? पूर्ण गुणों का अभेद पूर्ण द्रव्य। आहाहा! उसे दृष्टि में लेना। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय पूर्ण गुण से पूर्ण भरा हुआ द्रव्यस्वभाव है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय वर्तमान राग भी नहीं, भेद भी नहीं, मनुष्यपना आदि संहनन, संस्थान भी नहीं। आहाहा! अभेद चिदानन्द भगवान पूर्ण स्वरूप, जिसके साथ अनन्त गुणों को तादात्म्यसम्बन्ध है। भगवान आत्मा के साथ अनन्त ज्ञानादि गुणों का तद्रूप-तादात्म्यस्वरूप है, तो उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी की बात है। चारित्र की बात कहीं दूर है। यह तो बापू! आहाहा! यह ६१ गाथा का भावार्थ पूरा हुआ। ६२ (गाथा)।

गाथा ६२

जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुरभिनिवेशे दोषश्चायम्–

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई।।६२।।

जीवश्चैव ह्येते सर्वे भावा इति मन्यसे यदि हि।
जीवस्याजीवस्य च नास्ति विशेषस्तु ते कश्चित्।।

यथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिः पुद्गलद्रव्यमनुगच्छंतः पुद्गलस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंति, तथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिर्जीवमनुगच्छंतो जीवस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंतीति यस्याभिनिवेशः तस्य शेषद्रव्यासाधारणस्य वर्णाद्यात्मकत्वस्य पुद्गललक्षणस्य जीवेन स्वीकरणाज्जीवपुद्गलयोरविशेषप्रसक्तौ सत्यां पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्या –भावाद्भवत्येव जीवाभावः।

अब, यदि कोई ऐसा मिथ्या अभिप्राय व्यक्त करे कि जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य है, तो उसमें यह दोष आता है ऐसा इस गाथा द्वारा कहते हैं —

ये भाव सब हैं जीव जो, ऐसा हि तू माने कभी।
तो जीव और अजीव में कुछ, भेद तुझ रहता नहीं॥६२॥

गाथार्थ - वर्णादिक के साथ जीव का तादात्म्य माननेवाले को कहते हैं कि हे मिथ्या अभिप्रायवाले! [यदि हि च] यदि तुम [इति मन्यसे] ऐसे मानोगे कि [एते सर्वे भावाः] यह वर्णादिक सर्व भाव [जीवः एव हि] जीव ही हैं, [तु] तो [ते] तुम्हारे मत में [जीवस्य च अजीवस्य] जीव और अजीव का [कश्चित्] कोई [विशेषः] भेद [नास्ति] नहीं रहता।

टीका : जैसे वर्णादिक भाव, क्रमशः आविर्भाव (प्रगट होना, उपजना) और तिरोभाव (छिप जाना, नाश हो जाना) को प्राप्त होती हुई ऐसी उन-उन व्यक्तियों के द्वारा (अर्थात् पर्यायों के द्वारा) पुद्गलद्रव्य के साथ ही साथ रहते हुए, पुद्गल का वर्णादि के साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं-विस्तारते हैं, इसी प्रकार वर्णादिक भाव, क्रमशः आविर्भाव, और तिरोभाव को प्राप्त होती हुई ऐसी उन-उन व्यक्तियों के द्वारा जीव के साथ ही साथ रहते हुए, जीव का वर्णादिक के साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं — ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मत में, अन्य शेष द्रव्यों से असाधारण ऐसी वर्णादिस्वरूपता कि जो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है, उसका जीव के द्वारा अंगीकार किया जाता है इसलिए जीव-पुद्गल के अविशेष का प्रसंग आता है, और ऐसा होने से, पुद्गलों से भिन्न ऐसा कोई जीवद्रव्य न रहने से, जीव का अवश्य अभाव होता है।

भावार्थ - जैसे वर्णादिकभाव पुद्गलद्रव्य के साथ तादात्म्यस्वरूप हैं, उसी प्रकार जीव के साथ तादात्म्यस्वरूप हों तो जीव-पुद्गल में कोई भी भेद न रहे और ऐसा होने से जीव का ही अभाव हो जाये यह महादोष आता है।

गाथा - ६२ पर प्रवचन

अब, यदि कोई ऐसा मिथ्या अभिप्राय व्यक्त करे... कोई ऐसी मिथ्याश्रद्धा-अभिप्राय प्रगट करे कि **जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य है,...** आत्मा को रंग और राग, रंग और राग के साथ तादात्म्य है, एकरूप है-ऐसा मिथ्या अभिप्राय करे **तो उसमें यह दोष आता है, ऐसा इस गाथा द्वारा कहते हैं —** कोई ऐसा कहे कि आत्मा भगवान ज्ञायकस्वभाव के साथ राग, दया, दानादि राग, गुणस्थान आदि भाव और पर्याय के भेद को आत्मा के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, ऐसा कोई भ्रम करे तो उसे यहाँ दोष बताते हैं। आहाहा! ६२ (गाथा)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई।।६२।।

नीचे हरिगीत। आहाहा!

ये भाव सब हैं जीव जो, ऐसा हि तू माने कभी।
तो जीव और अजीव में कुछ, भेद तुझ रहता नहीं॥६२॥

ये रागादि पुद्गलादि के परिणाम तेरे हैं, ऐसा माने... यह भाव सब जीव है - ऐसा माने तो जीव और अजीव में कोई भेद नहीं रहता। आहाहा!

टीका.. सूक्ष्म गाथायें हैं। पूरा समयसार ही सूक्ष्म है।

श्रोता : पूरा आत्मा सूक्ष्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म में सूक्ष्म भगवान आत्मा है। आहाहा! चैतन्य भगवान अनन्त गुण से तादात्म्यस्वरूप प्रभु पर दृष्टि देने से धर्म की-सम्यग्दर्शन की पहली शुरुआत होती है। आहाहा! बाकी लाख, करोड़ अनन्त दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा अनन्त करे, उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह तो राग है। आहाहा! वह तो पुद्गल के परिणाम के साथ तादात्म्य है। जहाँ-जहाँ पुद्गल, वहाँ-वहाँ भेद और राग - ऐसा कहते हैं। आहाहा! जहाँ-जहाँ भगवान आत्मा, वहाँ-वहाँ राग और पुद्गल भेद नहीं। आहाहा! ऐसा तो अभी सुनना कठिन पड़े! वीतराग जिनेश्वरदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ दिव्यध्वनि में ऐसा कहते थे, वे यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव दिगम्बर सन्त वह बात जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! ओहोहो! अलौकिक बात है, प्रभु! शान्ति से सुनना।

जैसे वर्णादिक... रंग, गन्ध, रागादिभाव **क्रमशः आविर्भाव (प्रगट होना, उपजना) और तिरोभाव (छिप जाना, नाश हो जाना) को प्राप्त होती हुई ऐसी उन-उन व्यक्तियों के द्वारा (अर्थात् पर्यायों के द्वारा) पुद्गलद्रव्य के साथ ही साथ रहते हुए,...** आहाहा! यह तो कल एक बार कहा था न? निमित्त से हुआ है, वह हुआ है तो स्वयं से हुआ है। उस समय में गुणस्थान भेद, राग उत्पन्न होने का जन्मक्षण है तो उससे उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे जो उत्पन्न हुए हैं, वह आत्मा में त्रिकाल व्याप्त नहीं है। इस कारण वे रंग, गन्ध और दया, दान के भाव पुद्गल के साथ पुद्गल जहाँ व्यक्त होता है, वहाँ होते हैं, और उसमें व्यापते हैं। आहाहा! ऐसा काम।

एक ओर ऐसा कहना कि पुण्य और पाप के भाव आत्मा की पर्याय में होते हैं और

उसका कर्ता-भोक्ता जीव है, यह ज्ञान प्रधान कथन है। यहाँ दृष्टि प्रधान कथन में... आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति पंच महाव्रत के भाव हों... यहाँ कहते है प्रभु! दिगम्बर सन्त प्रभु कहते हैं वह कहते हैं। वे केवली के पथानुगामी दिगम्बर सन्त हैं। वे केवली परमात्मा ने कहा, उसकी साक्षी से वे कहते हैं। आहाहा! प्रभु! एक बार सुन! यह राग और पुण्य-पाप के भाव आदि की प्रगटता होती है... आहाहा! उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं, वह सब पुद्गल के साथ में है। आहाहा! यह उत्पाद-व्यय तेरे साथ नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म तत्त्व।

दया, दान, व्रत, शुभवाँचन आदि करना, उसका राग होना, आहा! श्रवण का जो राग आता है, वह राग पुद्गल के साथ उत्पन्न होता है और पुद्गल में व्यय होता है। आत्मा का वह उत्पाद-व्यय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ द्रव्यस्वभाव का वर्णन है न? और जीवद्रव्य का वर्णन है, उसमें अजीव के भेद नहीं हैं तो यह भेद और राग भी अजीव है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, विकल्प, नवतत्त्व की श्रद्धा का राग, छहकाय की दया का राग यह सब, कहते हैं कि पुद्गल के साथ उत्पन्न होता है और पुद्गल में नाश पाता है; स्वयं के साथ नहीं। देवीलालजी! ऐसी बात दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो (क्या) बात! आहाहा! कितना स्पष्ट कर दिया है!

उत्पाद-व्यय है उसमें परन्तु द्रव्यस्वभाव में वह नहीं है। इस कारण से राग की उत्पत्ति और राग का नाश पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। आविर्भाव-तिरोभाव। क्या कहा? आया न? आविर्भाव। रागादि का उत्पन्न होना और रागादि का तिरोभाव-नाश पाना। **ऐसी उन-उन व्यक्तियों के द्वारा (अर्थात् पर्यायों के द्वारा) पुद्गलद्रव्य के साथ ही साथ रहते हुए,...** आहाहा! शुभ-अशुभराग जो उत्पन्न होता है और व्यय-नाश होता है तो कहते हैं कि उसका पुद्गल के साथ व्याप्तपना है। आहाहा! और आविर्भाव तथा तिरोभाव-प्रगट होना और छूट जाना, वह सब पुद्गल के साथ है। आहाहा!

उन-उन व्यक्तियों के द्वारा (अर्थात् पर्यायों के द्वारा) पुद्गलद्रव्य के साथ ही साथ रहते हुए, पुद्गल का वर्णादि के साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं... उस पुद्गल के

साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं, विस्तारित करते हैं। वह पुद्गल का विस्तार है। आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का वह विस्तार नहीं है, स्वभाव का विस्तार नहीं है, यहाँ यह लेना है। भगवान चिदानन्द प्रभु अखण्डानन्द जिनस्वरूपी प्रभु, उस जिनस्वभावी भगवान का वह रागादि विस्तार नहीं है। आहाहा! रागादि की प्रसिद्धि, वह भगवान स्वरूप -जिनस्वरूप की प्रसिद्धि नहीं है। आहाहा! देखो! ये सन्त! सर्वज्ञ कहते हैं, वह दिगम्बर सन्त कहते हैं। आहाहा! और वह भी पंचम काल के प्राणी को कहते हैं। यह कहीं चौथे काल के साधु नहीं और चौथे काल के (शिष्य को) समझाते नहीं। आहाहा! पंचम काल के प्राणी को पंचम काल के सन्त (समझाते हैं)। आहाहा! कोई ऐसा कहे कि यह बात तो चौथे काल की है, चौथे काल में समझने की है। ऐसा नहीं, प्रभु! सुन तो सही! पंचम काल में भी तू आत्मा है या नहीं? आत्मा क्या है? वह अपने गुण से अभेद ऐसा आत्मा है। अभी ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि जिसे अभेद आत्मा की दृष्टि करना हो, उसे ये रागादि परिणाम अजीव के परिणाम हैं (-ऐसा लेना)। आहाहा! अब यहाँ अभी ऐसा कहते हैं कि शुभयोग ही अभी होता है, धर्म नहीं होता। अर र! और शुभयोग ही अभी धर्म का कारण है। अरे! प्रभु! क्या करता है? प्रभु तू?

वे पुद्गल में व्यापनेवाले भाव अपने हैं और उनसे लाभ मानना, वह तो महामिथ्यात्व अज्ञान है। आहाहा! ए... देवानुप्रिया! अन्दर है या नहीं? क्या सुनते हो यह? ये कहते थे न? आहा! ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! (ये) कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। (वे) भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजमान हैं, उनके पास गये थे। ओहोहो! आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर शास्त्र बनाये और फिर हजार वर्ष में अमृतचन्द्राचार्यदेव (हुए)। ये कुन्दकुन्दाचार्यदेव (हैं और ये) अमृतचन्द्राचार्यदेव हैं, उन्होंने यह टीका बनायी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! शान्ति से सुन! आहाहा! यह शुभ-अशुभराग की उत्पत्ति और व्यय पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। भगवान आत्मा के साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध हो तो उसमें त्रिकाल रहना चाहिए। राग की उत्पत्ति और राग का व्यय

आत्मा में त्रिकाल रहना चाहिए। (त्रिकाल नहीं रहता) तो वह आत्मा की चीज़ नहीं। आहाहा! पैसा, शरीर, धूल, लक्ष्मी आदि तो कहीं पर रह गये, वे तो पुद्गल पर रह गये। उनके साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध ही नहीं। आहाहा! यह शरीर, मिट्टी, धूल यह अन्दर आ गया। व्रजनाराचसंहनन औदारिक, वैक्रियिक शरीर आ गया है। आहाहा! वह सब तो पुद्गल के साथ वह पर्याय उत्पन्न होती है और व्यय होती है, वह पुद्गल के साथ है परन्तु यहाँ तो राग उत्पन्न होता है और राग का व्यय होता है, वह सम्बन्ध भगवान के साथ नहीं। यदि आत्मा के साथ हो तो कायम अवस्था में रहना चाहिए। आहाहा! आहाहा!

अरे! यह सुनने को मिले नहीं और मनुष्यपना चला जाता है। कहाँ जायेगा यह अवतार? आहाहा! यदि ये संस्कार अन्दर नहीं पड़े (तो) चौरासी के अवतार में कहाँ उतारा होगा? भाई! आहाहा! भगवान तो अनादि-अनन्त नित्य रहनेवाला है, तो यह भव पलटकर कहीं जायेगा तो अवश्य। आहाहा! तो जिसने राग मेरा है और मुझे राग से लाभ होगा (-ऐसा माना है, ऐसे) मिथ्यादृष्टि कहाँ जायेंगे? मिथ्यात्व में नरक और निगोद के अवतार में जायेंगे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! आहाहा! जिस कारण से तीर्थंकरगोत्र बँधे... प्रभु! सुनो! आहाहा! वह भाव राग है, वह पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। इसमें है या नहीं यह? आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव तो शुभराग है, बन्ध का कारण, वह कहीं धर्म नहीं है। है तो राग। षोडश कारणभावना... आहाहा! वह राग, अजीव है। आहाहा! जिसके फल में अजीव बँधता है। आहाहा! वह राग पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। वह उत्पन्न और व्यय, पुद्गलद्रव्य के साथ उसके उत्पाद-व्यय का सम्बन्ध है। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। लोगों को सोनगढ़ का ऐसा लगता है। यह सोनगढ़ का है या यह भगवान का है? आहाहा! आहाहा!

प्रभु! तेरा घर खोजने के लिए बात करते हैं। तेरा घर देख। उसमें राग और द्वेष की उत्पत्ति और व्यय नहीं है। आहाहा! तेरा नाथ भगवान है, वहाँ तो आनन्द की उत्पत्ति और आनन्द का व्यय है, उसके साथ भगवान को तो सम्बन्ध है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! आहा! यह राग चाहे तो पंच महाव्रत का विकल्प / राग हो, चाहे तो दया, दान, भक्ति का

राग हो... आहाहा! इस राग का उपजना-प्रगट होना, व्यय होना-नाश होना—ऐसा उत्पाद-व्यय का सम्बन्ध, आविर्भाव-तिरोभाव पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। आहाहा! जगत को ऐसा बैठना कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : आचार्य को भय नहीं लगा कि कोई निश्चयाभासी हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया दुनिया की जाने। नागा, वे बादशाह से आघा। उन्हें दुनिया की क्या पड़ी है? मार्ग यह है। वे तो एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्यदेव! आहाहा! उन्हें जगत की कुछ नहीं पड़ी। समाज संगठित रहेगा या नहीं? (उसकी दरकार नहीं है)। आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, वह यह सन्त जगत को कहते हैं। आहाहा! ऐसी वाणी और ऐसा भाव दिगम्बर शास्त्रों के अतिरिक्त कहीं नहीं है, प्रभु! आहाहा! परन्तु उसके बाड़ा में रहे, उन्हें पता नहीं होता। आहाहा! भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव, कुन्दकुन्दाचार्यदेव की पुकार है, प्रभु! तेरी प्रसिद्धि राग से होगी? आहाहा! राग की प्रसिद्धि तो पुद्गल की प्रसिद्धि है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात करते हैं न! तेरी प्रसिद्धि प्रभु! ज्ञान और आनन्द की पर्याय से तेरी प्रसिद्धि होती है। उस द्रव्यस्वभाव के अभेद पर दृष्टि पड़ने से... आहाहा! जो शान्ति और आनन्द की पर्याय उत्पन्न और व्यय हो, वह तेरी प्रसिद्धि है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है न? इस टीका का नाम आत्मख्याति है। यह तो अलौकिक बातें हैं बापू! समयसार अर्थात् जगत चक्षु, अजोड़ चक्षु!! आहाहा! पंचम काल के सन्त और ये टीकाकार भी अभी हजार वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो दो हजार वर्ष पहले हुए और ये टीकाकार हजार वर्ष पहले हुए। आहाहा! जगत की बेदरकारी करके सत्य यह है, यह सत्य का डंका मारा है! आहाहा!

प्रभु! आहा! एक बार यह आया था, नहीं? 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी, मुजरो, मुझ रोग ले हरी' प्रभु! तेरी प्रभुता तो तब कहते हैं कि निर्मल पर्याय की उत्पत्ति और व्यय हो, वह तेरी प्रभुता है। राग की उत्पत्ति और व्यय होना, वह तेरी प्रभुता नहीं, नाथ! आहाहा! पहले तो दूसरा कहा था। आहाहा! 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी' हे नाथ! तेरी प्रभुता तो तब खरी कि 'मुजरो मुझ रोग ले हरी' राग की उत्पत्ति मुझमें नहीं, राग की उत्पत्ति और व्यय

मुझमें नहीं। आहाहा! ए... शान्तिभाई! यह पुत्र को उत्पन्न करते और पैसे को उत्पन्न करते... क्या है यह सब? क्या है यह भ्रमणा? आहाहा! अरे रे! इसे कहाँ जाना है? आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा!

यह तो इसका (पुद्गल का) विस्तार है, कहते हैं। क्या कहते हैं? शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव तो पुद्गल का विस्तार है, पुद्गल की प्रसिद्धि है, पुद्गल प्रसिद्ध होता है; उसमें भगवान प्रसिद्ध नहीं होता। आहाहा! क्या उसकी गम्भीरता! क्या इस टीका के मर्म!! आहाहा! अमृत वाणी अमृतचन्द्राचार्यदेव की! सन्त-दिगम्बर सन्त अर्थात्... आहाहा! भगवान को १००८ नाम दिये हैं न? भाई! भगवान को १००८ नाम जिनसेनाचार्य ने दिये हैं, आदिपुराण कर्ता। वहाँ प्रभु को कहा, प्रभु! आहाहा! क्या कहना था? उसमें प्रभु को ऐसा कहा, प्रभु! तुम मुमुक्षु हो। प्रभु! तुम मनीष हो। हमारे इन भाई का मनीष नाम है? प्रवीण के पुत्र का। मनीष कहा है, मनीष। मनीष अर्थात् प्रभु! आप ज्ञान के ईश्वर हो, प्रभु! तेरी महिमा किस प्रकार करें? आहाहा! ऐसी बात परमात्मा... आहाहा! जिनकी पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द खिल निकला है... आहाहा! परमात्मा हजार पंखुड़ी से खिला है। जैसे गुलाब हजार पंखुड़ियों से खिले, वैसे यह प्रभु तो अनन्त पंखुड़ियों से खिला। यह इसकी प्रसिद्धि है। अनन्त आनन्द, ज्ञान की अनन्त गुण का उत्पाद-व्यय होना, गुण के आश्रय से होना, वह आत्मा का स्वभाव है। पर के आश्रय से जो रागादि हों, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है परन्तु क्या हो, भाई! मार्ग तो यह है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर, इन्द्र और गणधरों के बीच यह कहते थे, वह ये सन्त कहते हैं। आहाहा! भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ यह कहते थे, यह बात कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य यहाँ कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो वहाँ गये थे परन्तु अमृतचन्द्राचार्यदेव नहीं गये थे, तथापि अन्दर के भगवान के पास गये थे, इससे यह प्रसिद्धि की है। आहाहा!

हम आत्मा हैं कौन? आहाहा! हम आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता—ऐसी

एक-एक गुण की पूर्णता ऐसे अनन्त गुण की पूर्णता का प्रभु मैं आत्मा हूँ। आहाहा! उसकी उत्पत्ति तो निर्मल पर्याय हो, निर्मल पर्याय व्यय हो, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरेरे! प्रभु! क्या करे? कितने ही यह व्रत और तप और भक्ति से धर्म माने तो कितने गुरु-देव की और शास्त्र की भक्ति करे तो धर्म (होगा ऐसा) मानते हैं। सब एक प्रकार के हैं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति है, वह राग है और राग है, वह पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है, कहते हैं। अर र! आत्मा के साथ सम्बन्ध रखता हो तो आत्मा है, वहाँ सर्वत्र होना चाहिए। आहाहा! भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द जब हो, तब वह होता नहीं; इसलिए उस राग की उत्पत्ति और व्यय भगवान आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रखते। आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया से बात एकदम छेदी जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बातें दुनिया की, पागल की। पुण्य किसे कहना, पाप किसे कहना, इसका पता नहीं। शुभभाव और अशुभभाव दोनों में पुण्य ठीक है और पाप अठीक है—ऐसा माने, उसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रवचनसार ७७ गाथा में कहते हैं —**घोर हिडंदि संसारं मोह संछण्णो**—मिथ्यात्व से आच्छादित घोर संसार में भटकेगा। ए... देवानुप्रिया! यहाँ कुछ चले ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : दुनिया में चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ चले। शान्तिभाई और सब बैठे हों न जहाँ, वहाँ चलावे। आहाहा! ७७ गाथा में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि जो कोई शुभ-अशुभभाव है, उन दोनों में विशेष माने कि शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है तो दोनों में विशेष (अन्तर) माननेवाले घोर संसार में मोह से-मिथ्यात्व से आच्छादित रहा हुआ भटकेगा। आहाहा! **मोह संछण्णो** ऐसा पाठ है। भाई! दिगम्बर धर्म समझना, वह कोई अलौकिक बातें हैं। यह कहीं वाड़ा मिल गया, इसलिए दिगम्बर धर्म (हो गया, ऐसा नहीं है)। आहाहा!

दिगम्बर धर्म, वह कोई पन्थ / पक्ष नहीं है, वह वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव है कि जिसमें दया, दान और तीर्थंकर (गोत्र) बँधे, वह भाव भी आत्मा में नहीं

है। वह आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रखता, वह यह मार्ग है। आहाहा!

वर्णादिक भाव, क्रमशः आविर्भाव, और तिरोभाव को प्राप्त होती हुई ऐसी उन-उन व्यक्तियों के द्वारा जीव के साथ ही साथ रहते हुए,... क्या कहते हैं? पहले ऐसा कहा कि पुद्गल के साथ आविर्भाव-तिरोभाव, उत्पन्न और व्यय होते हैं - ऐसा बताया। वैसे आत्मा के साथ भी उत्पन्न और व्यय हो... आहाहा! है? **जीव के साथ ही साथ रहते हुए, जीव का वर्णादिक के साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं...** प्रसिद्ध करते हैं, ऐसा मानता है। **ऐसा जिसका अभिप्राय है, उसके मत में, अन्य शेष द्रव्यों से असाधारण ऐसी वर्णादिस्वरूपता कि जो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है, उसका जीव के द्वारा अंगीकार किया जाता है...** आहाहा! जो पुद्गल का स्वरूप है, वह जीव द्वारा अंगीकार किया जाता है। आहाहा! **जीव-पुद्गल के अविशेष का प्रसंग आता है,...** जीव और पुद्गल दोनों एक हैं, ऐसा प्रसंग आता है। आहाहा! क्या टीका!

विशेष (कहते हैं) जैसे पुद्गल जड़कर्म अजीव है, उसके साथ में रागादि अजीव उत्पन्न होता है और व्यय होता है, उसके साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। ऐसा कोई अभिप्राय रखे कि जीव के साथ राग का-अजीव का उत्पन्न होना और व्यय होना जीव के साथ सम्बन्ध रखता है तो उसने पुद्गल को ही जीव माना। आहाहा! जीवद्रव्य भिन्न है, ऐसा नहीं माना। आहाहा! यह बात वीतरागमार्ग... बापू! और जो वीतरागमार्ग समझे, एक क्षण भी समझ में आये तो भव का अन्त आ जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि जैसे पुद्गल के साथ में, जड़कर्म के साथ राग-द्वेष उत्पन्न होता है और व्यय होता है, वह वहाँ सम्बन्ध रखता है। ऐसा यदि आत्मा के साथ राग और द्वेष की साथ में उत्पत्ति का सम्बन्ध रखे तो आत्मा, पुद्गल हो जाये, तो जीवद्रव्य तो रहे नहीं। आहाहा! जो पुण्य-पाप के भाव का आत्मा के साथ सम्बन्ध मानता है, तो उसे जीवद्रव्य नहीं रहा, पुद्गल (द्रव्य) हो गया, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

जिस आत्मा ने ऐसा अभिप्राय रखा कि मेरे साथ राग की उत्पत्ति और राग का व्यय होता है तो उसने पुद्गल को ही अपना माना; आत्मा भिन्न है-ऐसा नहीं माना। आहाहा! ऐसी बात! अगास है न? श्रीमद् का-

श्रीमद् में अगास में एक घण्टे व्याख्यान हुआ। रात्रि को थोड़े प्रश्न (हुए) परन्तु यह बात सच्ची, इसका साधन क्या? साधन ऐसा कि यह भक्ति आदि करें वह साधन। अरे रे! प्रभु! आहाहा! भगवान की और गुरु की तथा शास्त्र की भक्ति तो राग है, राग की उत्पत्ति और व्यय का सम्बन्ध निश्चय से तो पुद्गल के साथ है। व्यवहार से एक समय की पर्याय में संसार अवस्था में हो, परन्तु तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : वह व्यवहार से कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार से एक समय की पर्याय की अपेक्षा से कहा परन्तु तादात्म्यसम्बन्ध नहीं। कायम नहीं रहता, इसलिए सम्बन्ध नहीं। आहाहा! बाद की गाथा में यह कहेंगे। आहाहा! इसके बाद की गाथा में कहेंगे। संसार में है, उसे भी तू मान कि यह मेरा है, तो वह पुद्गल हो गया और पुद्गल की मुक्ति हुई। आहाहा! क्या यह बात! यह श्वेताम्बर के ४५, ३२ सूत्र पढ़े तो यह बात वहाँ से नहीं निकलती। आहाहा!

यह तो भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव के पास गये (और) अन्तर में जिनेश्वर प्रभु के पास गये, उनकी यह सन्तों की वाणी है। आहाहा! जहाँ हम गये, वहाँ तो राग और द्वेष है नहीं न! आहाहा! हमारा प्रभु जो आत्मा शुद्ध चिदानन्द, वहाँ हम गये, वहाँ तो राग-द्वेष संसार है नहीं न! उस राग-द्वेष का सम्बन्ध आत्मा के साथ है नहीं। आहाहा! यह तो अमृतचन्द्राचार्यदेव, कुन्दकुन्दाचार्यदेव के बाद हजार वर्ष में हुए और ये तो भगवान के पास भी नहीं गये थे। वे तो यहाँ के (निज भगवान) के पास न! गये न! आहाहा!

श्रोता : उनके हजार वर्ष बाद आप हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी सुनना मुश्किल पड़ जाये ऐसा है।

एक ओर ऐसा कहे कि पुण्य-पाप और राग जीव की पर्याय में (होता है), जीव उसका कर्ता-भोक्ता है-यह ज्ञान की अपेक्षा से (कहे)। और एक ओर दृष्टि की अपेक्षा से कहे कि राग और द्वेष की उत्पत्ति को पुद्गल के साथ सम्बन्ध है। स्वभाव की दृष्टि से देखने पर वे पर के हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

यदि ये पुण्य और पाप के भाव, दया, दानादि के भाव जैसे पुद्गल के साथ उत्पाद-व्यय धारण करते, व्याप्त होते दिखायी देते हैं, वैसे यदि आत्मा के साथ भी वे

दिखायी दें, तब तो पुद्गल हुआ, आत्मा पुद्गल हुआ; जीव रहा नहीं। राग बिना अखण्डानन्द प्रभु रागरहित उस जीवद्रव्य का तो नाश हुआ और पुद्गलद्रव्य की प्रसिद्धि हुई। आहाहा! आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर प्रभु विराजता है न! प्रभु! नाथ! आहाहा! उसे तू रागवाला माने तब तो वह पुद्गलमय हो गया; वह जीव वहाँ नहीं रहा, प्रभु! आहाहा! अरे! राग के शुभभाव को तू धर्म माने और वह राग मेरा माने, प्रभु! वहाँ आत्मा नहीं रहा, हों! आहाहा! वह पुद्गल की ख्याति और प्रसिद्धि हुई। आहाहा! कहो, देवानुप्रिया! इसमें इनकार किया जाये, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! ऐसा है। यह धीर का काम है, बापू! आहाहा! क्या सन्तों ने भी गजब किया है!

न्याय प्राप्त शब्द आया है न? आहाहा! वहाँ पहले में आया था न? **यह बात न्याय है प्राप्त है।** भावार्थ में अन्तिम शब्द है। लॉजिक से-न्याय से यह मार्ग प्राप्त है। आहाहा! भगवन्त तेरे स्वरूप में जो राग-द्वेष की उत्पत्ति तुझसे हो, तब तो तू पुद्गलमय हो गया, आत्मा रहा नहीं। आहाहा! क्योंकि राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, वह राग-द्वेष तो अजीव है। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम अजीव हैं, वे अजीव तुझसे उत्पन्न हों तो तू जीव तो रहा नहीं। ए..ई! यह जीव-अजीव अधिकार है। आहाहा! वहाँ धनबाद में लेने जाये वहाँ नहीं मिले ऐसा वहाँ।

मुमुक्षु : इसलिए तो यहाँ आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तभी तो आते हैं- ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात, बापू! क्या हो? अभी तो बहुत गड़बड़ी कर डाली है। पण्डित लोग और साधु ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि यह व्रत, तप और भक्ति करो (तो) धर्म होगा... प्रभु... प्रभु... प्रभु...! पंचम काल में दूसरा नहीं होता, शुभभाव ही होता है - ऐसा कहते हैं। अर र! परन्तु आत्मा में शुभभाव है ही नहीं। वह शुभभाव पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है।

मुमुक्षु : आप अकेले हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला कौन दोकला कौन? भगवान! यहाँ तो है वह है। आहाहा! दिगम्बर सन्त-मुनियों ने भी क्या गजब काम किया! प्रभु! आहाहा! केवलज्ञानी का विरह भुलाया है सन्तों ने-प्रभु ने। आहाहा! भाई! तू ऐसा कहे कि इस शुभराग से मुझे

लाभ होता है, शुभराग मेरा... प्रभु! यह तो पुद्गल की प्रसिद्धि हुई, नाथ! तेरी प्रसिद्धि इसमें नहीं आयी, इसमें तेरी प्रसिद्धि नहीं आयी। आहाहा! तूने तो राग को प्रधान पद दे दिया। है? आहाहा! राग तो पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। तादात्म्यसम्बन्ध वहाँ है। जहाँ-जहाँ कर्म, वहाँ-वहाँ राग।

आत्मावलोकन में एक (बात) आयी है, भाई! जहाँ तक निमित्त है, वहाँ तक राग है। यह किसलिए कहा? दो का सम्बन्ध बताना है। आत्मावलोकन में ऐसा है। जहाँ तक कर्म है, वहाँ तक राग है। कर्म न हो तो राग नहीं, ऐसा कहकर अनित्यता स्थापित करना है और पुद्गल के सम्बन्ध के लक्ष्य से होता है, इसलिए वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! आत्मावलोकन में है। उस दिन पढ़ा, तब चिह्न किया था। कल देखा था। भाई हिम्मत लाया था। आहाहा!

भगवान आत्मा तो अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता का भण्डार भगवान है। उसमें से-भण्डार में से निकले तो राग निकले? उसमें कहाँ है? राग की उत्पत्ति का कोई गुण ही नहीं न! आहाहा! ऐसा जो भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका जहाँ स्वीकार होता है, वहाँ तो पर्याय में अनन्त आनन्द, शान्ति आदि की पर्याय प्रस्फुटित होती है, उस उत्पाद-व्यय का सम्बन्ध द्रव्य के साथ है। आहाहा! कि जो उत्पाद और व्यय सिद्ध में भी रहता है। आहाहा!

एक बार मस्तिष्क में आया था, प्रभु! तुमने मुझे यहाँ भेजा? ऐसा आया था। उसका अर्थ कि प्रभु! तुम्हारे ज्ञान में मैं आया, ऐसा कहाँ से ज्ञान में आया? तेरे ज्ञान में ऐसा आया प्रभु! कि मैं यहाँ आऊँगा। यह तूने भेजा, ऐसा मैंने कहा, भाई! समझ में आया? आहाहा! इसका अर्थ यह कि प्रभु! तुम्हारे ज्ञान में ऐसा था न कि यहाँ आवे। आहाहा! इस अपेक्षा से ऐसी बात है। आहाहा! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्यदेव ने अमृत बहाया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं प्रभु! एक बार सुन! चाहे तो भक्ति का राग, परमात्मा के स्मरण का, पंच परमेष्ठी के स्मरण का (राग हो)... और एक व्यक्ति ने ऐसा कहा है, नाम नहीं देते, ऐसा कि भगवान का स्मरण है, उसमें कषाय कहाँ आायी? पता नहीं? ऐसा कि वहाँ कषाय कहाँ आयी? भगवान का स्मरण करना उसमें (कषाय क्या)? परन्तु स्मरण करना,

वही विकल्प / राग है। वहाँ से-ईसरी से आया है, उसमें आया है। ऐसा कि परमात्मा के गुणों का स्मरण करना। परन्तु उन परद्रव्य के गुणों का स्मरण करने से विकल्प (होता है) भाई! आहाहा! ऐसा कहते हैं कि कषाय कहाँ आयी? बापू! वह स्वयं कषाय है, भाई! और उस कषाय की उत्पत्ति तथा व्यय पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है, प्रभु! आहाहा! गजब बात है, भाई! आहाहा!

यह जब भगवान तीन लोक के नाथ दिव्यध्वनि द्वारा ये अर्थ करते होंगे... आहाहा! और गणधर तथा एकावतारी इन्द्र जहाँ (हों)! गणधर उस भव में मोक्ष जानेवाले, इन्द्र एकावतारी हैं, उन्हें भी जहाँ विस्मय लगता होगा, वह वस्तु कैसी होगी?

यह यहाँ कहते हैं कि **जो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है,...** द्रव्यों से असाधारण है न? **ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मत में, अन्य शेष द्रव्यों से असाधारण ऐसी वर्णादि -स्वरूपता कि जो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है,...** रागादि। **उसका जीव के द्वारा अंगीकार किया जाता है...** उस पुद्गल के स्वभाव को जीव के साथ उसने अंगीकार किया। **जीव-पुद्गल के अविशेष...** जीव और पुद्गल की भिन्नता नहीं रही, **एकरूपता का प्रसंग आया।** आहाहा! कहो! इस शुभराग से आत्मा को धर्म होता है - ऐसा माननेवाले, उसे कहते हैं कि तूने पुद्गल को आत्मा माना है। आहाहा! **जीव का अवश्य अभाव होता है।** आहाहा! यह राग का विकल्प जो है, वह आत्मा के साथ सम्बन्ध रखता है-ऐसा यदि माने तो वह तो पुद्गल का-अजीव का लक्षण है। वह तो अजीव के साथ तादात्म्य है और अजीव का लक्षण है। आहाहा! क्योंकि राग स्वयं अजीव है। आहाहा! वह जीवस्वरूप नहीं। आहाहा! और जीवस्वरूप नहीं, तथापि उसका सम्बन्ध अपने में माने तो आत्मा, पुद्गल हो गया, जीव तो भिन्न रहा नहीं। आहाहा! **जीव का अवश्य अभाव होता है।** लो बहुत सरस टीका आयी!

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)